हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में राजनीति

डॉ. लविन्द्रसिंह लबाना
एसोसिएट प्रोफेसर,
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर

हरिशंकर परसाई और राजनीति एक दूसरे के लगभग पर्याय बने हुए हैं। दोनों को एक सिक्के के दो पहलुओं के समान माना जा सकता है। परसाई जी ने यद्यपि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि विषयों पर व्यंग्य निबंध लिखे हैं। परंतु उनके व्यंग्यों के कथ्य का यह वर्गीकरण स्थूल ही दृष्टिगोचर होता है। वास्तव में उन्होंने मूल रूप से आजादी के बाद अपने व्यंग्य में राजनीति और समाज के विभिन्न घटकों के विरोधों को उजागर किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात पश्चिम के अलगाववादियों के नकल करने वाले तथा कथित भारतीय मध्यम वर्ग को उन्होंने स्वतंत्र भारत भावुक आजादी और राष्ट्रप्रेम के नीचे पलते हुए भ्रष्टाचार के चित्र दिखाने की चेष्टा की है और विकल्प के रूप में क्रांतिकारी विचारधारा का संदेश दिया है। हिंदी साहित्य में परसाई जी पहले व्यंग्यकार हैं जिन्होंने राजनीति पर इतना अधिक लिखा है और वह भी नग्न। उनके व्यंग्य निबंधों में हमें भारतीय राजनीति के खोखलेपन, उस में फैले हुए भ्रष्टाचार, मौकापरस्थी तथा हमारे पेट रूप और भ्रष्ट नेताओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

सामान्यतया यह देखा जा सकता है कि साहित्यकार राजनीति की ज्यादा उपेक्षा करते हैं परंतु परसाई जी उनमें से नहीं। उन्होंने तो राजनीति को जिस प्रकार आड़े हाथों लिया है वह बेहद ही दिलचस्प है। देश के नाम पर उल्लू बनाते, देश के गद्दारों के साथ महफिल रंगीन करते उन नेताओं का चित्र इनके निबंधों में प्रस्तुत किया है , जो यहां की जनता को बेवकूफ और बलि का बकरा बनाते रहते हैं। हमारे नेता लोग के ध्यान को रोजमर्रा की समस्याओं पर से हटा कर किस प्रकार दूसरी तरफ मोड़ देते हैं इस कला में पूर्णतया माहिर है उदाहरण के लिए परसाई जी द्वारा रचित सुजलाम सुफलाम निबंध लिया जा सकता है। भोग बनने के बाद भी अपने देश के ऊपर न्योछावर हो जाता है। उसे भी ऐसा लगता है कि जैसे उनका देश पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है। और रेगिस्तान का आदमी जो ऊंट का पेट चीरकर पानी निकाल कर पीता है वह भी गाता है -- बलिहारी इस देश की।

जब सामान्य आदमी इस प्रकार के देशभक्ति के गीत गाने में मस्त हो जाता है तब नेताओं का काम और भी अधिक सरल बन जाता है। वह उसे यही सिखाते हैं कि स्वर्ग समान अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान करो भले ही बाद में भूखा ही मरना पड़े इसके पीछे जो व्यंग छिपा हुआ है उसे हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं -- जिस देश में आदमी को दो वक्त की रोटी के लिए भी लाले पड़ जाते हैं वहां उसे अपने इस अभाव का क्या ध्यान रहेगा। इसके लिए उसे देश प्रेम का अफीम चटा कर सुला दिया जाता है।

इसके अलावा भी लोगों का ध्यान उसी और टेक्निक में चला जाता है और वह यह है कि जाति और धर्म का मुद्दा बड़ा ही संवेदनशील होता है और इससे बड़े लोगों के मस्तिष्क साफ हो जाते हैं। देश प्रेम में जो बेकारी है, भूखमरी है,ओर व्यवस्था है इस सब को मिटाने के लिए कोई समय हमारे नेताओं के पास नहीं है। परंतु जब चुनाव आते हैं तब उनका दिल अमुक अमुक जातियां और शहरों में दंगे करवाते रहेंगे , बाद में कैमरामैनो के साथ निकल कर दंगा ग्रस्त स्थलों के फोटो खिंचवा आएंगे। समाचार पत्रों में लिखा वही हार्दिक वेदना व्यक्त करेंगे और नाटक रच देंगे, जैसे इनकी मां मर गई हो।

परसाई जी ने हमारी अति संवेदनशीलता पर भी करारा व्यंग्य किया है जिसे पढ़कर हम एक क्षण के लिए तो अवाक रह जाएंगे। जैसे-- दुनिया में जहां गाय की पूजा नहीं होती वहां दूध के काम आती है और यहां पूजी जाती है, इसलिए वह दंगों के काम आती है।

चुनाव के समय पार्टियां और नेताओं के द्वारा किए जाने वाले तरह-तरह के वायदों से हम लोग परिचित ही हैं। चुनाव जीतने के लिए कई बार ऐसे - ऐसे वायदे किए जाते हैं जो कभी भी संभव नहीं होते। जैसे- अगर हमारी पार्टी सत्ता में आ गई तो सौ दिन के अंदर जीवन जरूरत की चीज वस्तुओं की कीमतें आधी कर दी जाएगी। गरीबों को दो रुपए किलो के चावल दिए जाएंगे आदि कई प्रकार के ऐसे वायदे किए जाते हैं जो पाँच साल तक पूरे नहीं किए जाते परंतु जैसे ही वह पार्टी सत्ता में आती है तो वस्तुओं की कीमतें घटने के बजाय बढ़ती है। इसी बात को परसाई जी ने गुड़ की चाय नामक व्यंग्य में इस प्रकार प्रकट किया है। जैसे -- शक्कर एकदम महंगी हो गई है तो लोगों को अब गुड़ की चाय पीनी पड़ रही है। इसके कारण को उन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत किया है की पहली बार पढ़ते समय तो हम हंस-हंसकर लट्टू हो जाए। परंतु उनकी पोल खोलते हुए परसाई जी लिखते हैं -- सुना है पहले दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा रहता था। कौन लिखता था वह आस्तिक जानते होंगे। पर अब इन्हीं दानों पर काले बाजारियों का नाम लिखने लगा है। दाने पर खाने के बदले उसके बिना भूखे मरने वालों का नाम लिखकर काले गोदामों में डाल देना।

इस निबंध में एक दूसरा उदाहरण भी दर्शनीय हैं जैसे -- और यह कह रहा है भैया हमारी माता जी शक्कर देवी की मृत्यु हो गई। मैं कहता हूं राम राम बहुत बुरा हुआ। क्या बीमारी थी माता जी को। वह जवाब देता है बीमारी तो कुछ भी नहीं थी। चार-पांच दिन पहले तक बाजार में चल फिर रही थी,फिर अफसरों ने और काले बाजारियों ने मार डाला।

यहां पर हम देख सकते हैं कि गैरकानूनी काम अमन चैन से तभी किया जा सकता है जब प्रशासन का सहयोग मिलता है। क्योंकि इन सब में मंत्री, अफसर और असामाजिक तत्व, काले बाजारिया आदि सभी की मिली भगत होती हैं। क्योंकि वह समय पर एक दूसरे को लाभ दिला देते हैं। फिर उनके लिए चाहे भारत के संविधान को ही क्यों ना बदलना पड़े। इस संदर्भ में परसाई जी कहते हैं -- भारतीय दंड संहिता अगर महाकाव्य है तो अब तक रचे अध्यादेश ललित गीत हैं। राजनीतिक भ्रष्टाचार ने हमारी समूची व्यवस्था को एवं न्याय प्रक्रिया को इस प्रकार खोखला कर दिया है कि आम आदमी उसमें विश्वास ही नहीं कर सकता। अन्न की मौत नामक व्यंग्य में पूरी खोखली व्यवस्था पर करारी चोट मारते हुए परसाई जी कहते हैं --

सरकार कहती है कि हमने चूहे पकड़ने के लिए दानिया रखी है एक चूहे दानी की हमने भी जांच की है। उस में घुसने के छेद से बड़ा छेद पीछे से निकलने के लिए हैं। चूहा इधर से घुसता है और उधर से निकल जाता है। पिंजरे बनाने वाले और चूहे पकड़ने वाले चूहों से मिले हैं। वह इधर हमें पिंजड़ा दिखाते हैं और चूहा को छेद दिखा देते हैं। हमारे माथे पर सिर्फ चूहे दानी का खर्च बढ़ रहा है। हमको तो कुर्सी का कोई मोह नहीं है। हम तो जनता के सेवक हैं। जैसे धीरे-धीरे रटे रटाए वाक्य बोलने वाले नेताओं के पेट और उसकी तिजोरियां इतनी बड़ी होती है कि वे कभी भरती ही नहीं है। परसाई जी ने अकाल उत्सव में इसी का चित्रण इस प्रकार किया है - राष्ट्र ने अकाल उत्सव मनाना तय कर लिया। मंत्री जी अकाल उत्सव समारोह का उद्घाटन करने वाले थे। पटवारी ने भूखों से चंदा इकट्ठा करके गुलाबों की माला कस्बे से मंगवा ली थी। स्त्रियां खाली मंगल घरों में सूखे नाले के किनारे की घास रखकर उतारने चल रही थी। वह गा रही थी -- अब के बरस फिर न बरसों मंगल पड़े अकाल रे।

जनतंत्र व्यंग्य

हमारे देश का प्रजातंत्र या जनतांत्रिक व्यवस्था भी एक विचारणीय मुद्दा है क्या वास्तव में भारत जनतंत्र देश हैं ? और अगर है तो किसके लिए हैं ? वास्तव में देखा जाए तो जनतंत्र कम से कम हमारे देश में तो आम आदमी के लिए नहीं हैं।

वह उनके लिए हैं जो इसका इस्तेमाल अपने निजी स्वार्थ और लोभ के लिए करते हैं। प्रजातंत्र बचाइए के नारे लगाने वाले यह नेता और उसकी राजनीतिक पार्टियां क्या जनतंत्र को बचा सकती है ?

इन सब का उत्तर नकार में दिया जा सकता है। क्योंकि ऐसे नेताओं के कई चेहरे होते हैं। इन्हे सिर्फ अपनी ही पड़ी है और इन्हें सत्ता के अलावा कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तो यह क्या देश में जनतंत्र की रखवाली करेंगे। उनको लगता है कि किस पार्टी में जाने से मिनिस्टर या किसी बोर्ड का अध्यक्ष पद मिल जाए तो वे सिद्धांत को ध्यान में न रखते हुए फौरन दल बदल कर लेते हैं। यह नेता मगरमच्छ की तरह नीति और नियमों को निकलते चले जा रहे हैं। इसी स्थिति की स्पष्टता परसाई जी ने अपने व्यंग्य बेरंग शुभकामना और जनतंत्र में इस प्रकार की है --

सोचता हूं मैं भी चुनाव लड़कर जनतंत्र बचा लू। जब जनतंत्र की सब्जी पक आएगी तब एक प्लेट अपने भी हिस्से में आ जाएगी। जो कई सालों तक जनतंत्र की सब्जी खाते रहते हैं वह कहते हैं बड़ी स्वादिष्ट होती है। जनतंत्र की सब्जी में जन का छिलका चिपका रहता है, उसे छिल दो और खाली तंत्र को पका लो। आदर्शों का मसाला और कागजाती कार्यक्रम का नमक डालो और नौकरशाही की चम्मच से खाओ तो बड़ा मजा आता है। ऐसा कहते हैं खाने वाले।

हमारे यहां समय समय पर चुनाव का मौसम भी आता है। तो चारों ओर लाउडस्पीकरो से आती आवाज पोस्टर तथा आक्षेप प्रतिआक्षेप छाए रहते हैं। परसाई जी ने अन्न की मौत नामक व्यंग में चुनाव पर व्यंग्य किया है। वह हमारी तत्कालीन परिस्थितियों को उजागर करता है।

भूखमरी और भ्रष्टाचार हमारी राष्ट्रीय एकता के ताकतवर तत्व माने गए हैं। कैसी अद्‌भुत एकता है पंजाब का गेहूं गुजरात के काले बाजारों में बिकता है। मध्यप्रदेश के चावल कोलकाता में मुनाफाखोरी के गोदामों में भरे हुए हैं। कानपुर का ठग मदुराई में ठगी करता है। हिंदी भाषी जेबकतरा तमिल भाषी जेबकतरे की जेब काटता है। सभी सीमाएं टूट गई हैं। क्योंकि देश एक है। मुनाफाखोरी, काला बाजार और भ्रष्टाचारियों ने मिलकर राष्ट्र को एक कर दिया है।

काम करने में जितनी बेईमानी हमारे देश में होती है उतनी शायद कहीं नहीं होती होगी। अधिकारों की मांग तो सभी बड़ी ऊंची आवाजों में करते हैं,परंतु काम करने के लिए बात कोई नहीं कहता। बात- बात में विरोधी राजनीतिक पार्टियां बंद का ऐलान करती रहती है। कोई रास्ता रोको का, कोई रेल रोको का आंदोलन करता है। परंतु क्या इन सब बातों से हमारी समस्या सुलझ जाएगी। गरीबी हटाओ और गरीबी हटनी चाहिए। ऐसे नारे लगाने वाले ने कितनी गरीबी हटाई है। इस बात को परसाई जी ने ठिठुरता हुआ गणतंत्र नामक व्यंग्य में सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया है। गणतंत्र दिवस पर होने वाली परेड में भी सभी लोग तालिया नहीं बजाते क्योंकि ठंड बहुत है और अगर कोर्ट में से हाथ बाहर निकालते हैं तो अक्कड़ जाते हैं। इसलिए जिनके पास कोट है वे तो जेब में हाथ डालकर खड़े रहते हैं। इस निबंध में परसाई जी ने यह कहना चाहा है कि गणतंत्र दिवस की परेड में राष्ट्र को जो सजा धजा कर दिखाया जाता है ,वह असल में वैसा नहीं होता। ऐसी परेड में विकास कार्य जनजीवन और इतिहास की रंगीन झांकियां निकाली जाती है। परंतु हम इतना जानते हैं कि क्या हमारे देश में इतनी शांति है। हमें इतना विश्वास हो चुका है कि शांति नहीं है। क्योंकि यह सब नेताओं की असफलताओं पर की जाने वाली लीपापोती है। अंग्रेजी छुरी- कांटे से प्लेट में इंडिया को खाने लगे। विदेशी अंग्रेज देश को पश्चिमी सभ्यता के सलाद के साथ खाते हैं और देसी सत्ताधारी जनतंत्र के आचार के साथ खाते हैं। जितने भाषण इस देश के नेता देते हैं उतने किसी भी देश के नेता नहीं देते होंगे। लगभग अर्धसदी से रोटी की जगह ही भाषण मिल रहे हैं। लोगों का हाजमा खराब हो गया है। बीमार करने लगा है। भारतीय राजनीति भ्रष्टाचार और भाषण ईश्वर बन गया है। ऐसा ही हाल समाजवाद का है और घोषणा की जाती है कि देश में समाजवाद आ रहा है। और अभी तक तो नहीं आया है। कहां अटक गया है। लगभग सभी पार्टियां समाजवाद लाने का दावा करती है। लेकिन वह नहीं आ रहा। इस प्रकार मातादीन चांद पर व्यंग्य में पूरे पुलिस विभाग में ऊपर से नीचे तक किस प्रकार भ्रष्टाचार फैला हुआ है उसका अत्यंत दयनीय व्यंग्य का पूर्ण चित्रण हुआ है। कोई गुनाह होता है तो किस प्रकार तथाकथित चश्मदीद गवाह पेश

किए जाते हैं, किस प्रकार घूस ली जाती है और किस प्रकार निर्दोष आदमी को लपेटे में लिया जाता है। आदि सभी हथकंडे जो पुलिस में प्रचलित है उसका हास्य पूर्ण चित्रण हुआ है। जैसे मातादीन कहता है -- चश्मदीद गवाह किसे कहते हैं जानते हैं, चश्मदीद गवाह वह नहीं जो देखें बल्कि वह जो कहे मैंने देखा है।

अंत में हरिशंकर परसाई के राजनीति पर आधारित व्यंग्य को पढ़कर और उन्हें समझ कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि परसाई जी ने इस महादेश की जन सच्चाई को रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। स्वतंत्र भारत की मूल्य हीन राजनीति पर खुला प्रहार उनकी रचनाओं का मुख्य केंद्र है। उन्होंने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि मेरा लेखन प्रमुख रूप से राजनैतिक है। और इस संदर्भ में वह स्पष्ट रूप से मानते हैं।

मेरा विश्वास है कि कोई लेखक अराजनैतिक नहीं हो सकता। क्योंकि राजनीति मनुष्य की परिणीति तय करती है जो यह कहते हैं कि लेखन का राजनीति से क्या लेना वह खुद बड़े भेदी राजनीति के शिकार होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

१. हरिशंकर परसाई के प्रतिनिधि व्यंग्य